मध्यप्रदेश की प्राचीन जैन कला

प्रो० कृष्णदत्त वाजपेयी

ललित कलाओंके विकासकी दृष्टिसे भारतके मध्यवर्ती क्षेत्रका विशेष महत्त्व है। प्रागैतिहासिक युगसे लेकर उत्तर-मध्यकाल तक इस भूभागमें ललित कलाएँ अनेक रूपोंमें संवर्धित होती रहीं। नर्मदाके उत्तर विंध्यकी उपत्यकाओंमें आदिम जन एक दीर्घकाल तक शिलाश्रयोंमें निवास करते थे। वे अपनी गुहाओंकी दीवालों और छतोंपर चित्रकारी करते थे। अधिकांश प्राचीन चित्र आज भी इन गुहाओंमें सुरक्षित हैं और तत्कालीन जन-जीवन पर रोचक प्रकाश डालते हैं।

इस क्षेत्रमें से होकर अनेक बड़े मार्ग जाते थे। ये मार्ग मुख्यतः व्यापारिक सुविधा हेतु बनाये गये थे। धर्म-प्रचार तथा साधारण आवागमनके लिए भी उनका उपयोग होता था। एक बड़ा मार्ग इलाहाबाद जिलेके प्राचीन कौशाम्बी नगरसे भरहुत (जि० सतना), एरन (प्राचीन ऐरिकिण, जि० सागर), ग्यारसपुर तथा विदिशा होते हुए उज्जैनको जाता था। उज्जैनसे गोदावरी-तट पर स्थित प्रतिष्ठान (आधुनिक पैठन) नगर तक मार्ग जाता था। अन्य बड़ा मार्ग मथुरासे पद्मावती (ग्वालियरके पास पवाया), कान्तिपुरी (मुरेना जिलेका कुतवार), तुम्बवन (तुमैन, जि० गुना), देवगढ़ (जि० झांसी) होता हुआ विदिशाको जाता था। तुम्बवनसे एक मार्ग कौशांबीको जोड़ता था। इन मार्गों पर अनेक नगरोंके अतिरिक्त छोटे गाँव भी थे। व्यापारी तथा अन्य लोग जो इन मार्गोंसे यात्रा करते थे, इन मार्गोंके उपयुक्त स्थानों पर मंदिरों, स्तूपों, धर्मशालाओं आदिका निर्माण कराते थे। बड़े नगरों, गांवों तथा वन्यस्थलोंमें अनेक मंदिरों आदिके अवशेष मिले। इनमें जैन स्मारकों तथा कलाकृतियोंकी संख्या बहुत बड़ी है। तुमैन, देवगढ़, चंदेरी, थूबौन, अहार, विदिशा, खजुराहो आदि स्थान जैन वास्तु तथा मूर्तिकलाके प्रमुख केन्द्र बने। मध्यकालमें देशके विभिन्न भागोंमें जैन धर्मका जो इतना अधिक प्रसार हुआ उसका एक मुख्य कारण व्यापारियों द्वारा बहुत बड़ी संख्यामें जैन मंदिरों, मठों, मूर्तियों आदिका निर्माण कराना तथा विद्वानोंको प्रोत्साहन प्रदान करना था।

मध्यप्रदेश क्षेत्रमें भरहुत तथा सांची बौद्धकलाके आरंभिक केन्द्रोंके रूपमें प्रख्यात हैं। विदिशा, एरन, भुमरा, नचना आदि अनेक स्थलों पर वैष्णव तथा शैवधर्मोंका विकास मौर्य युगसे लेकर गुप्त-युग तक बड़े रूपमें हुआ। जहां तक जैन धर्मका संबंध है, अनुश्रुति द्वारा इस क्षेत्रमें इस धर्मके उद्भव तथा प्रारंभिक विकास पर रोचक प्रकाश पड़ता है। जैन साहित्यमें विदिशा नगरीका उल्लेख बड़े सम्मानके साथ किया गया है, और यह कहा गया है कि इस नगरीमें भगवान् महावीरकी पूजा प्रारंभमें 'जीवन्तस्वामी'के रूपमें होती थी। अनुश्रुतिके आधारपर, अवन्तिके शासक प्रद्योतने इस प्रतिमाको रोरुक (सिंध-सौवीर राज्य)से लाकर विदिशामें प्रतिष्ठापित किया था। इस प्रतिमाके सम्मानमें रथयात्राओंके उत्सव बड़े समारोहके साथ निकलते थे।

विदिशाके अतिरिक्त उज्जयिनी (उज्जैन)में भी जैनधर्मके प्रारंभिक प्रचारका उल्लेख 'कालकाचार्य-कथानक' आदि ग्रन्थों में उपलब्ध है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शुंग-सातवाहन काल (ई० पूर्व दूसरी शतीसे लगभग २०० ई० तक)में विदिशामें यक्ष-पूजाका प्रचलन था। यक्षों तथा यक्षियोंकी अनेक महत्त्वपूर्ण मूर्तियां विदिशासे मिली हैं। कुछ वर्ष पूर्व बेतवा नदीसे यक्ष-यक्षीकी विशाल प्रतिमाएँ प्राप्त हुईं, जो अब विदिशाके संग्रहालयमें सुरक्षित हैं। नाग-पूजाका भी प्रचार विदिशा, पद्मावती, कान्तिपुरी आदि स्थानोंमें बड़े रूपमें हुआ। नाग-नागियोंकी प्रतिमाएँ सर्पाकार तथा मानवाकार दोनों रूपोंमें बनायी जाती थीं।

शक-कुषाण-युग (ई० पूर्व प्रथम शतीसे द्वितीय शती ई०के अंत तक)में कला-केंद्रके रूपमें मथुरा की बड़ी उन्नति हुई। वहां जैन तथा बौद्ध धर्मोंका असाधारण विकास हुआ। मूर्ति शास्त्र के महत्त्वकी दृष्टिसे मथुरामें निर्मित प्रारंभिक जैन एवं बौद्ध कलाकृतियां तथा वैदिक-पौराणिक देवोंकी अनेक प्रतिमाएँ उल्लेख-नीय हैं। विविध भारतीय धर्म पूर्ण स्वातंत्र्य तथा सहिष्णुताके वातावरणमें साथ-साथ, बिना ईर्ष्या-द्वेषके मथुरा, विदिशा, उज्जयिनी आदि अनेक नगरोंमें शताब्दियों तक पल्लवित-पुष्पित होते रहे। यह धर्म-सहि-ष्णुता प्राचीन भारतीय इतिहासकी एक बहुत बड़ी विशेषता मानी जाती है।

शक-कुषाण कालमें मथुराके साथ विदिशाका संपर्क बहुत बढ़ा। इन वंशोंके शासकोंके बाद विदिशामें नाग राजाओंका शासन स्थापित हुआ। उनके समयमें मथुरा कलाका स्पष्ट प्रभाव मध्यभारतके पद्मावती, विदिशा आदि नगरोंकी कलाकृतियोंमें देखनेको मिलता है। कलामें बाह्य रूप तथा आध्यात्मिक सौंदर्यके साथ रसदृष्टिका समावेश इस कालसे मिलने लगता है, जिसका उन्मेष गुप्तकाल (चौथीसे छठी शती ई०)में विशेष रूपसे हुआ।

मुख्यत: मथुरामें जैन तीर्थंकर प्रतिमाओंको विशिष्ट लांछन या प्रतीक प्रदान करनेकी बात प्रारंभ हुई। श्रीवत्स चिह्नके अतिरिक्त विविध मंगलचिह्न तथा तीर्थंकरोंसे संबंधित उनके विशेष प्रतीकोंका विधान उनकी प्रतिमाओंमें मथुराको प्राचीन कलामें देखनेको मिलता है। जैन सर्वतोभद्र (चौमुखी) प्रतिमाएँ भी मथुरामें कुषाणकालसे बनने लगी। इसका अनुकरण अन्य कला केन्द्रोंमें किया गया।

कुछ वर्ष पूर्व विदिशासे तीन दुर्लभ तीर्थंकर मूर्तियोंकी प्राप्ति हुई। इन तीनों पर ब्राह्मी लिपि तथा संस्कृत भाषामें लेख खुदे हैं। दो प्रतिमाओं पर तीर्थंकर चन्द्रप्रभका नाम तथा तीसरी पर तीर्थंकर पुष्पदंतका नाम उत्कीर्ण है। लेखोंसे ज्ञात हुआ है कि तीनों मूर्तियोंका निर्माण गुप्तवंशके शासक 'महाराजाधिराज' रामगुप्तके द्वारा कराया गया। यह रामगुप्त गुप्तसम्राट् चंद्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्यका बड़ा भाई था। उक्त लेखों तथा रामगुप्त नामवाले बहुसंख्यक सिक्कोंसे रामगुप्तकी ऐतिहासिकता सिद्ध हो गयी है।

इन तीनों मूर्तियोंकी कला निस्संदेह मथुरा शैलीसे प्रभावित है। ध्यानमुद्रामें पद्मासन पर स्थिति, अंगोंका विन्यास, सादा प्रभामंडल आदिसे इस बातकी पुष्टि होती है। मथुराकी प्रारंभिक मूर्तियोंकी तरह ये तीनों प्रतिमाएँ भी चारों ओरसे कोरकर बनायी गयी हैं। प्रत्येक तीर्थंकर मूर्तिके दोनों ओर चँवर लिए हुए देवताओंको प्रदर्शित किया गया है। मूर्तियोंकी चौकी पर चक्र बना है। विदिशासे प्राप्त ये तीनों नवीन मूर्तियाँ स्थानीय मटमैले पत्थरकी बनी हैं। उनके लेख सांची तथा उदयगिरिके गुप्तकालीन ब्राह्मी लेखों जैसे हैं।

गुप्तयुगमें जैन कलाकृतियोंका निर्माण विवेच्य क्षेत्रके विविध भागोंमें जारी रहा। विदिशाके पास उदयगिरिकी गुफा संख्या २०में गुप्त-सम्राट् कुमारगुप्त प्रथमके शासन-कालमें तीर्थंकर पार्श्वनाथकी अत्यंत कलापूर्ण मूर्तिका निर्माण हुआ। पन्ना जिलेमें सहेलाके समीप सीरा पहाड़ीसे एक तीर्थंकर प्रतिमा मिली है, जिसका निर्माणकाल लगभग ५०० ई० है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

झांसी जिलाकी ललितपुर तहसीलमें स्थित देवगढ़में गुप्तकालमें तथा पूर्वमध्यकाल (लगभग ६५० से १२०० ई०)में कलाका प्रचुर उन्मेष हुआ। गुप्तकालमें वहां विष्णुके प्रसिद्ध दशावतार-मंदिरका निर्माण हुआ। अगले कालमें यहां बेतवा नदीके ठीक तट पर अत्यंत मनोरम स्थल पर जैन मंदिरोंका निर्माण हुआ। यह निर्माण-कार्य सातवींसे बारहवीं शती तक होता रहा। इस कार्यमें शासकीय प्रोत्साहनके अतिरिक्त व्यवसायी वर्ग तथा जनसाधारणका सहयोग प्राप्त हुआ। फलस्वरूप यहां बहुसंख्यक कलाकृतियां निर्मित हुई। देवगढ़में जैन धर्मके भट्टारक संप्रदायके आचार्योंने समीपवर्ती क्षेत्रमें जैन धर्मके प्रसारमें बड़ा कार्य किया।

चंदेरी, थूबोन, दुधई, चांदपुर आदि अनेक स्थलोंसे जैन धर्म संबंधी बहुसंख्यक स्मारक तथा मूर्तियां मिली हैं। ये इस बातकी द्योतक हैं कि पूर्वमध्यकालमें जैन धर्मका अत्यधिक विकास हुआ। पूर्वमें खजुराहो (जि० छतरपुर) इस क्षेत्रका एक केंद्र बना, जहां मंदिरोंके अतिरिक्त अनेक कलात्मक मूर्तियां दर्शनीय हैं। पूर्व तथा उत्तर मध्यकाल (१२०० से १८०० ई०)में मध्यप्रदेशके अनेक क्षेत्रोंमें कलाका प्रचुर विकास हुआ। अहार, बीना-बारहा, अजयगढ़, बानपुरा, मोहेन्द्रा, तेरही, दमोह, गंधरावल, ग्वालियर, ग्यारसपुर भानपुरा, बड़ोह-पठारी आदि कितने ही स्थलोंसे जैन कालकी प्रभूत सामग्री उपलब्ध हुई है। इसे देखनेपर पता चला कि वास्तुकला तथा मूर्तिकला अनेक रूपोंमें यहां विकसित होती रही। अधिकांश मंदिरोंका निर्माण नागर-शैली पर हुआ। मूर्तियोंमें प्रतिमा-लक्षणोंकी ओर विशेष ध्यान दिया गया।

पूर्व युगोंके अनुरूप बहुसंख्यक मध्यकालीन जैन कलाकृतियां अभिलिखित मिली हैं। उन पर अंकित लेखोंसे न केवल धार्मिक इतिहासके संबंधमें जानकारी प्राप्त हुई है अपितु राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा भाषात्मक विषयों पर रोचक प्रकाश पड़ा है। मध्यप्रदेशके विभिन्न सार्वजनिक संग्रहालयों तथा निजी संग्रहोंके अतिरिक्त कलाकी विशाल सामग्री आज भी विभिन्न प्राचीन स्थलों पर बिखरी पड़ी है, जिसकी समुचित सुरक्षाकी ओर अब तुरंत ध्यान देना आवश्यक है।

●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org